प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

1.1 : प्रस्तावना : (Introduction)

शिक्षा के बिना एक आदमी नींव के बिना एक इमारत की तरह है। हमारे जीवन में शिक्षा का बहुत अधिक महत्व होता है। शिक्षा मानव जीवन का अभिन्न अंग है। शिक्षा और ज्ञान न केवल व्यक्तिगत विकास के लिए आवश्यक है, बल्कि यह अर्थव्यवस्था के विकास के लिए भी आवश्यक है। शिक्षा एक व्यक्ति की सोच का पोषण करती है और उन्हें जीवन में सोचने, कार्य करने और आगे बढ़ने की क्षमता प्रदान करती है। शिक्षा लोगों को सशक्त बनाती है और उन्हें काम के संबंधित क्षेत्रों में रहने और अनुभव के सभी पहलुओं में कुशल बनने में मदद करती है। शिक्षा बहुत महत्वपूर्ण है, यह लोगों के दिमाग को खोलती है और समझ, आगे बढ़ने और विकास करने की क्षमता प्रदान करती है। शिक्षा एकमात्र मूल्यवान संपत्ति है जिसे मनुष्य प्राप्त कर सकता है। शिक्षा एकमात्र आधार है जिस पर मानव जाति का भविष्य निर्भर करता है।

नवजात शिशु असहाय तथा सामाजिक होता है वह न बोलना जानता है और चलना फिरना। उसका न कोई मित्र होता है न शत्रु यही नहीं उसे समाज के रीति रिवाजों तथा परम्पराओं का ज्ञान भी नहीं होता और न ही उसमें किसी आदर्श तथा मूल्य को प्राप्त करने की जिज्ञासा पायी जाती है परन्तु जैसे–जैसे वो बड़ा होता जाता है वैसे वैसे उस पर शिक्षा के औपचारिक तथा अनौपचारिक साधनों का प्रभाव पडता जाता है इस प्रभाव के कारण उसका जहां एक ओर शारीरिक,

मानसिक तथा संवेगात्मक विकास होता जाता है वही दूसरी ओर उसमें सामाजिक भावना भी विकसित होती जाती है परिणामस्वरूप वह शनै–शनै प्रौढ़ व्यक्तियों के उत्तरदायित्वों को सफलतापूर्वक निभाने के योग्य बन जाता है। इस प्रकार बालक के व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन लाने के लिए व्यस्थित शिक्षा की परम आवश्यकता है।

शिक्षा माता के समान पालन पोषण करती है पिता के समान उचित मार्गदर्शन द्वारा अपने कार्यों में लगाती है तथा पत्नी की भांति सांसारिक चिन्ताओं को दूर करके प्रसन्नता प्रदान करती है। शिक्षा के द्वारा ही हमारी कीर्ति का प्रकाश चारों ओर फैलता है तथा शिक्षा हमारी समस्याओं को सुलझाती है तथा हमारे जीवन को सुसंस्कृत बनाती है। संक्षेप में शिक्षा वह प्रकाश है जिसके द्वारा बालक की समस्त शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास होता है जिससे वह समाज का उत्तरदायी घटक एवं राष्ट्र का प्रखर चरित्र सम्पन्न नागरिक बनकर समाज की सर्वागीण उन्नति में अपनी शक्ति का उत्तरोत्तर प्रयोग करने की भावना से ओत–प्रोत होकर संस्कृति तथा सभ्यता को पुर्नजीवित एवं पुर्नस्थापित करने के लिए प्रेरित हो जाता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में जन्म लेता है और समाज में रहकर उसकी विभिन्न शक्तियों का विकास होता है तथा इस विकास में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। मनुष्य को पूर्ण सामाजिक प्राणी बनाने में या उसका सामाजीकरण करने में शिक्षा का विशेष योगदान रहता है। शिक्षा को मानव जाति के सर्वागीण प्रगति का श्रेष्ठतम साधन कहा जा सकता है। पाषण युग से आज तक मानव सभ्यता ने परमाणु युग और कम्प्युटर युग में प्रवेश कर लिया है। इसका

श्रेय मुख्यतः शिक्षा को ही जाता है। शिक्षा वह प्रकाश है जिसके द्वारा बालक की समस्त शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास होता है। इससे वह समाज का एक उत्तरदायी घटक एवं राष्ट्र का प्रखर चरित्र–सम्पन्न नागरिक बनकर समाज की सर्वागीर्ण उन्नति में अपनी शक्ति का उत्तरोत्तर प्रयोग करने की भावना से ओत–प्रोत होकर संस्कृति तथा सभ्यता को पुनर्जीवित एवं पुर्नस्थापित करने के लिए प्रेरित हो जाता है। शिक्षा की आधुनिक धारणा के अनुसार शिक्षा बालक के अन्दर छिपी हुई समस्त शक्तियों को सामाजिक वातावरण में विकसित करने की कला है।

कई हजार वर्षो तक भारतीय आचार्यों एवं पथ–प्रणेताओं ने इस परम्परा और शिक्षा पद्धति को स्थिर बनाए रखा, परन्तु कालांन्तर में शिक्षा का रूप बदलने लगा और गुरू–केन्द्रित शिक्षा धीरे–धीरे परिधि की ओर बढ़ने लगी तथा व्यावहारिक दृष्टि से इसका निरूपण होने लगा। गुरू की केन्द्रीय स्थिति में विद्यार्थी आ गया और शिक्षा बाल–केन्द्रित हो गई। इसलिए प्राचीन कालीन मान्यताओं पर प्रश्नचिन्ह लगने लगे। उस समय की पूरी शिक्षा प्रणाली में गुरू का महत्वपूर्ण स्थान था, परन्तु उस समय भी विषय विशेष के सामान्य गुरू होने की परम्परा थी।

धीरे–धीरे इस परम्परा में सुधार हुआ और शिक्षा का स्वरूप बदलने लगा। पुरातन शिक्षा प्रणाली के गुरूकुल वर्तमान में विद्यालय एवं महाविद्यालयों मे परिवर्तित होते चले गए और उसी के अनुरूप शिक्षा का स्वरूप भी बदलता गया।

''यह सत्य ही है कि भारत के भविष्य का निर्माण उसकी कक्षाओं में हो रहा है। भारत की भावी सुरक्षा, कल्याण, समृद्धि एवं सम्पन्नता वास्तव में उन्हीं लोगों पर

अवलम्बित है जो हमारे विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में अध्ययन कर रहे हैं। किसी समाज या देश का पुनःनिर्माण कर उसको प्रगति एवं उन्नति के पथ पर अग्रसर करने के लिए अति आवश्यक है कि विद्यालय एवं महाविद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास किया जाये।

सृष्टि में जीवन का उत्कर्ष एक अद्‌भुत तथा विलक्षण घटना है। अब तक की जान कारी, अनुमान, वैज्ञानिक परीक्षण एवं शोधो से यह ज्ञात नहीं हो सकता है कि प्रकृति तथा ब्रह्माण्ड की घटनाएँ ऐसे ही क्यों घटित होती हैं? जैसी हमें परिलक्षित होती हैं। मनुष्य अपनी चिन्तन शक्ति, तर्कशक्ति, रूचि व कल्पना के आधार पर ज्ञान–विज्ञान की शाखाएं सृजित करता जा रहा है परन्तु वह ऐसा क्यों कर रहा है? इस क्यों का जवाब शायद वह स्वयं भी नहीं जानता है। मनुष्य को जानकारी केवल यह है हम अपने जीवन की सत्ता को सुरक्षित रखें तथा सृष्टि के नियमों में किसी प्रकार का व्यवधान ना हो। मानव इसे ही अपने जीवन की संतुष्टि, आवश्यकता तथा अनुभूति मानकर चल रहा है। प्रकृति और मानव की इसी वैचारिक यात्रा के पथ पर अनेक मान्यताओं, विचारधाराओं तथा दार्शनिक अवधारणाओं का जन्म हुआ। दर्शन के सिद्धान्तों का शिक्षा में व्यावहारिक प्रयोग विगत शताब्दी से शुरू हुआ जो ज्ञान की दिशा में मनोविज्ञान का नवीनतम प्रयास है।

आज शिक्षाशास्त्र, समाज विज्ञान तथा मनोविज्ञान में किए जा रहे शोधों का मुख्य विषय मानवीय त्रासदी से जीवन की सुरक्षा हेतु उपायों पर विचार करना रह गया है, क्योंकि विज्ञान चाहे कितने ही दावे करे कि उसने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है परन्तु उनके दावे उस समय पलक झपकते ही खोखले नजर आते हैं, जब

सुनामी जैसी त्रासदी घटित हो जाती है, उस वक्त मन में विचार उठते हैं कि कहां गया विज्ञान? कहाँ गये वे लोग, जो वैज्ञानिक क्रान्ति का दावा करते हैं व मंगल ग्रह पर मनुष्य जीवन को संभव बताते हैं? अगर ऐसा है तो मानव जीवन को ऐसी त्रासदी से क्यों नहीं बचाया जा सकता? क्यों नहीं एक दिन या 2 दिन या 72 घंटे पहले बता देते कि अमुक घटना घटित होने वाली है। अगर ऐसा संभव नहीं हो सकता तो फिर हम कैसे सोच सकते हैं कि मानव ने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है। औपचारिक शिक्षामें यही शोध की बातें विद्यार्थी, शिक्षक, समाज, शिक्षण विधि तथा विषयवस्तु पर केन्द्रित हो जाती है।

शिक्षक अपने छात्रों को शिक्षादेकर उसके भविष्य को सुखद तथा निरपवाद बनाना चाहता है। आज का बालक कल की राष्ट्रीय धरोहर है, उसे सुरक्षित करने के लिए प्रत्येक शिक्षक अपने विद्यार्थी के विकास, उन्नति तथा अभ्युदय की कामना करता है। परन्तु आज का विद्यार्थी कल के लिए किस प्रकार तैयार किया जाये, यह जटिल प्रश्न सदा से ही कौतूहल का विषय बना रहा है व बना रहेगा। क्यों शिक्षक व अभिभावक चाहते कुछ हैं, विद्यार्थी बनता कुछ और है, ऐसा क्यों? क्योंकि सभी समानताएँ होने के बावजूद भी विद्यार्थी, अभिभावक व शिक्षक के मनोविज्ञान में अन्तर विद्यमान रहता है। भौतिक, शारीरिक एवं जैविकीय दृष्टि से चाहे हमें मर्यादा समान दिखाई देती हो किन्तु हम मनोवैज्ञानिक पक्षों में समानता ढूंढने अथवा एकरूपता लाने में आज भी असमर्थ हैं। इसका कारण वैयक्तिक भिन्नता का होना है, जिस पर व्यक्ति के व्यक्तित्व, कल्पना, तर्क, भावना, उसका आत्मबोध, सामाजिक वर्ग, जीवन संतुष्टि एवं उपलब्धि अभिप्रेरणा सर्वथा एक दूसरे से भिन्न होते हैं।

विद्यार्थी भी ऐसे ही मनोवैज्ञानिक चरों के आधार पर शिक्षकों से भिन्न होता है। बुद्धि, शरीर, आदत, अभिप्रेरणा, संतुष्टि इत्यादि में समानता होने पर भी सूक्ष्म दृष्टि से समानता नहीं हो सकती, क्योंकि यह नैसर्गिक सत्यता है। इसी का विवेचन प्रस्तुत शोध के माध्यम से करने का प्रयास किया गया है। विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक क्षमता का अध्ययन एक शोध में नहीं हो सकता, परन्तु कुछ चरों पर विचार करके कुछ काल्पनिक अवधारणाओं का वैज्ञानिक सत्यापन खोजा जा सकता है। शिक्षा का उद्देश्य ही व्यक्तित्व का परिमार्जन है, उसका विकास उचित दृष्टि से हो सके, उनके व्यक्तिगत मूल्य समाज और राष्ट्र की मुख्यधारा के अनुकूल हो, उसकी उपलब्धि अभिप्रेरणा उच्च स्तर की बनी रहे, इन्हीं दृष्टिकोणों से शैक्षिक और मनोवैज्ञानिक शोधों का औचित्य बनता है। इस शोध में कुछ ऐसे ही मूलभूत पक्षों पर विचार किया गया है।

प्राचीनकाल से भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की अपनी कुछ विशेषताएँ रही हैं जिसके कारण भारतीय समाज विश्व के अन्य देशों के समाजों के मुकाबले उन्नति एवं प्रगति के पथ पर अग्रसर होता है। संस्कृति एवं सभ्यता की दृष्टि से इसे सदैव शीर्ष स्थान दिया जाता रहा है। भारतीय समाज में सभ्यता एवं संस्कृति के इतिहास का अध्ययन करने पर पाते हैं कि प्राचीन समय में समाज कई वर्गों में विभक्त कर दिया गया था। सामन्ती एवं प्रारम्भिक मध्ययुगीन काल में परिस्थिति का निर्धारक तत्व 'जन्म' था। परन्तु परिस्थिति निर्धारक के रूप में जन्म सामाजिक पद का नियन्त्रक तत्व उस समय तक रहा जब तक नये सामाजिक एवं आर्थिक विकासों ने सामन्ती प्रणाली को विस्थापित नहीं कर दिया। औद्योगिक क्रान्ति एवं व्यापारिक, वित्तीय तथा धर्मशाला उत्पाद के उद्यम के विकास के साथ सम्पति की

पुनः परिभाषा की गई। सम्पति का सामाजिक मूल्य के रूप में विकास हुआ जिससे परिस्थिति के निर्धारक तत्व के रूप में जन्म का स्थान कम महत्वपूर्ण हो गया। बाद में एक नयी वर्ग व्यवस्था का जन्म हुआ, जिसमें व्यक्तिगत उपलब्धियों के आधार पर उद्यमी एवं उपक्रमी व्यक्ति पद क्रम में ऊंचे चढ़ सकते थे। व्यक्ति की सामाजिक स्थिति अब जन्म के आकस्मिक तत्व के आधार पर सदा–सदा के लिए निर्धारित नहीं होती थी। नये गतिशील पूंजीवादी समाज में सम्पति ने अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। आधुनिक समाजों में आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में घनिष्ठ सम्बन्ध है। परम्परागत वर्गीय समांकलन धुंधले पड़ते गये और एक नवीन सामाजिक संरचना का जन्म हुआ जिसमें श्रमिक एवं पूंजीपति दोनों पदक्रम में ऊँचा चढ़ने के लिए सामाजिक रूप से परिश्रम करने लगे। सम्पति सभी समाजिक विभाजनों में प्रवेश कर गयी और यह सामाजक स्थिरीकरण का एक सार्वभौमिक एवं महत्वपूर्ण आधार बन गयी। इसी आधार पर भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में भारतीय समाज को आरक्षित एवं अनारक्षित वर्ग में बांट दिया गया। सामाजिक वर्ग के संबोध का सैद्धान्तिक विकास अरस्तू के समय में ही हो चुका था। जब उसने जनसंख्या को तीन भागों में बांटा यथा – वे लोग जो सम्पन्न थे, यानि सुविधाभोगी वर्ग, वे लोग जो निर्धन व विपन्न हैं यानि सुविधा वंचित वर्ग तथा वे लोग जो इन दोनों वर्गों के मध्य में स्थित हैं, यानि सामान्य वर्ग। परन्तु वर्तमान में अरस्तू की धारणा को विश्वसनीय न मानकर मात्र दो वर्ग रखे गये हैं – एक आरक्षित यानि जो सुविधावंचित (निम्नवर्ग) व दूसरा अनारक्षित अर्थात जो सुविधाभोगी वर्ग (उच्च वर्ग)। सामाजिक वर्ग का महत्व व्यक्ति व समय दोनों के लिए है। वर्ग ही यह निश्चित करता है कि जीवन में विभिन्न परिस्थितियों को प्राप्त करने के कितने

अवसर उपलब्ध हैं। इतना ही नहीं बालक का सामाजीकरण व व्यक्तित्व का विकास ही वर्ग के आधार पर होता है। जन्म की विभिन्न परिस्थितियों से कितना समायोजन करना है और किस प्रकार से जीवन स्तर को उच्च बनाना है, यह वर्ग संस्कृति ही निर्धारित करती है।

भारतीय समाज एवं संस्कृति अतिप्राचीन है। इनमें अनेक विविधताएं और जटिलताएँ छिपी हैं। भारत भूमि पर अनेक प्रजातियों एवं संस्कृतियों का आगमन होता रहा है और अनेक सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्थाओं ने इसी धरती पर जन्म लिया है। यही कारण है कि भारत में अनेक विविधताएं होते हुए भी ये सभी एकता के सूत्र में विद्यमान हैं। इस एकता एवं विविधताओं ने ही भारतीय समाज एवं संस्कृति की अपनी एक विशिष्टता बनाए रखी है, यद्यपि समय–समय पर बाहर से आने वाली संस्कृतियों के सम्पर्क में आने के कारण इसमें परिवर्तन एवं संशोधन होते रहे हैं।

प्राचीन भारत तथा आधुनिक भारत पर यदि सूक्ष्मता से दृष्टिपात करें तो हम पाऐंगे कि **''सर्वधर्म समभाव''** की भावना धीरे–धीरे लुप्त होती जा रही है। आरक्षित एवं अनारक्षित वर्ग की परस्पर दूरियाँ बढ़ती जा रही है। जिसके परिणामस्वरूप इन वर्गों के आधार पर सामाजिक संरचना भी प्रभावित हो रही है। वर्तमान सामाजिक जटिलताओं का प्रभाव न केवल बालक अपितु युवा वर्ग पर भी पड़ रहा है। कहा जाता है कि भारत के भविष्यका निर्माण विद्यालय में अध्ययनरत बालकों पर निर्भर करता है परन्तु यही बालक स्नातक स्तर की शिक्षाप्राप्त करने के लिए महाविद्यालय में प्रवेश लेते हैं तो उनकी व्यक्तिगत मूल्यों का भी भविष्यपर प्रभाव पड़ता है।

स्टेनले हॉल के अनुसार किशोरावस्था तनाव, दबाव व तूफान की अवस्था है परन्तु युवावस्था भी इससे कहीं अधिक जटिलतम परिवर्तनों की अवस्था कही जा सकती है। एक तो युवा विद्यार्थी विद्यालय को छोड़कर महाविद्यालयों में प्रवेश लेता है, दूसरा विभिन्न प्रकार के शारीरिक परिवर्तनों का सामना करता है ऐसी अवस्था में अपने साथियों के साथ महाविद्यालयी गतिविधियों एवं व्यवहार को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित किये बिना नहीं रह सकता। इस अवस्था में व्यक्ति विभिन्न प्रकार की चिन्ताओं और परेशानियों का सामना करता है।

शोधकर्ता का मानना है कि सिरोही जिले के जनजातीय एवं गैर जनजातीय क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति एवं शैक्षिक समस्या वर्तमान में न केवल समाज के लिए हानिप्रद है वरन् स्वयं के लिए भी एक विकट समस्या बन जाती है। जब विद्यार्थी को जीवन संतुष्टि नहीं मिल पाती है तो वह मानसिक रूप से विक्षिप्त हो सकता है और इसके लिए वह न केवल स्वयं को अपितु समाज को भी दोषी मानता है। परन्तु प्रश्न उठता है कि क्या आज मानव की उन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है जिनको वह प्राप्त करना चाहता है? आज भी इस आरक्षण की व्यवस्था में यह असंभव ही प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति में विद्यार्थियों की सांवेगिक बुद्धि, जीवन संतुष्टि एवं उपलब्धि अभिप्रेरणा में निरन्तर कमी आती जा रही है और विद्यार्थी परिवार, समाज व राष्ट्र के विकास में अपना सार्थक योगदान नहीं दे पाता है जिससे न केवल स्वयं उसका अपितु राष्ट्र का भविष्य भी प्रभावित होता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में व्यक्ति की भिन्नता का मुख्य आधार बुद्धि है। बुद्धि के माध्यम से ही मनुष्य नई–नई परिस्थितियों का सफलतापूर्वक सामना करता है और आगे बढ़ने का प्रयास करता रहता है। मनुष्य की इसी बुद्धि को सही दिशा में अग्रसर करने में निर्देशन का बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहता है। मानव जीवन के प्रत्येक कार्य में बुद्धि के साथ–साथ उचित निर्देशन की महता एवं उपयोगिता है। बुद्धि वह मानसिक योग्यता है जिसके द्वारा हल करने, किसी उद्देश्य की पूर्ति या किसी समस्या का समाधान करने के लिए सम्बन्धित वस्तुओं एवं विचारों को सोचते हैं। अतः इसी समस्या–समाधान के लिए बुद्धि को सही दिशा में परीक्षा द्वारा बुद्धि मापी जाती है, इसलिए उसकी भी बहुत अधिक उपयोगिता है। बुद्धि लब्धि के आधार पर व्यक्ति के बौद्धिक स्तर का पता लगाकर उसे उसी दिशा में उचित एवं सम्यक् दिशा–निर्देश दिया जा सकता है।

शैक्षिक ही नहीं वरन् किसी भी क्षेत्र में मनुष्य या बालक की बुद्धि लब्धि के आधार पर उन्हें उसी दिशा में जिसके वे योग्य हो आगे बढ़ने के लिए निर्देशित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए बुद्धि लब्धि ज्ञात करके बालक के शैक्षिक पिछड़ेपन के कारणों का पता लगाकर उसे दूर करने के लिए निर्देशित किया जा सकता है। बुद्धिलब्धि के आधार पर ही हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि बालक का पिछड़ना विद्यालय में उसकी मानसिक योग्यता ही है या अन्य कोई कारण। अतः इन कारणों का पता लगाकर उन्हें सही दिशा में निर्देशित किया जाता है। निर्देशन का महत्व केवल शिक्षा में ही नहीं वरन् बुद्धि लब्धि के आधार पर उधोगों, प्रशासन या अन्य क्षेत्रों में अधिकारियों, कर्मचारियों तथा विशेषज्ञों के चुनाव में सहायक हो सकता है।

बुद्धि परीक्षा अध्यापकों और विशेषज्ञों को बालकों के लिए व्यावसायिक चुनाव में मदद करती है तथा उन्हें उचित निर्देशन प्रदान करती है। वर्तमान युग में बुद्धि परीक्षण शिक्षाके क्षेत्र में वरदान साबित हुआ है। इसी बुद्धि परीक्षण के आधार पर बालक की मानसिक योग्यता का पता लगाकर उसके आवश्यकतानुसार व्यावसायिक अथवा शैक्षिक निर्देशन दिया जा सकता है।

बुद्धि के अर्थ एवं स्वरूप को लेकर मनोवैज्ञानिकों में हमेशा मतभेद रहा है। प्राचीन काल में बुद्धि का प्रयोग/अर्थ संकुचित रूप में किया जाता था। सामान्यतः रहने की प्रवृति को बुद्धि का परिचायक माना जाता था, लेकिन आधुनिक युग में बुद्धि किसी व्यक्ति की क्षमताओं अथवा संज्ञानात्मक शक्तियों की सूचना देने के सम्बन्ध में प्रयुक्त की जाती है। बुद्धि को अनेक तरह से व्यक्त किया जाता है। कोई इसे शक्ति मानता है तो कोई इसे मानसिक विकास, इनके उतर में यही कहा जा सकता है कि जिस तत्व के कारण बालकों के सीखने की क्षमता में अन्तर पाया जाता है। जिस तथ्य के कारण उनकी स्मृति में भिन्नता दिखाई देती है। जिस तथ्य के कारण किसी समस्या को हल करने में वैयक्तिक अन्तर दिखाई देता है। उस कारण को समझाने के लिए जो अर्थ हम देते हैं उस अर्थ में ही बुद्धि की संज्ञा दी जाती है। संक्षेप में बुद्धि एक अर्थ है, जिसे अंग्रेजी में ब्वदेजतनबज के नाम से जाना जाता है।

स्टर्न के अनुसार, ''बुद्धि एक व्यक्ति की सामान्य क्षमता है, जिसके द्वारा वह चेतनापूर्वक अपने विचारों को नवीन आवश्यकताओं से समायोजित करता है। यह

नई समस्याओं तथा जीवन की परिस्थितियों के प्रति सामान्य मानसिक ग्रहणशीलता है।'' इस प्रकार स्टर्न ने बुद्धि में तीन बातें स्पष्ट बतायी है –

- यह सीखने की क्षमता है,
- भावात्मक सम्बोधन,
- समस्या समाधान की योग्यता

टरमैन के शब्दों में, ''भावात्मक विचारों के अनुरूप चिन्तन क्रिया ही व्यक्ति की बुद्धि कहलाती है।''

थार्नडाइक के अनुसार, ''वास्तविक परिस्थितियों के अनुसार अपेक्षित प्रतिक्रिया की योग्यता ही बुद्धि है।''

एच.ई.गैरेट के अनुसार, ''ऐसी समस्याओं को हल करने की योग्यता, जिनमें ज्ञान और प्रतीकों को समझने तथा प्रयोग करने की आवश्यकता है, जैसे – शब्द, अंक, रेखाचित्र, समीकरण और सूत्र ही बुद्धि है।''

उक्त तथ्य से यह कहा जा सकता है कि ''बुद्धि को लेकर भिन्नताएं दिखाई देती है फिर भी इन्हें आधार मानकर यह कहा जा सकता है कि बुद्धि सामान्य, मानसिक और जन्मजात योग्यताओं का वह समन्वय है जिसकी सहायता से व्यक्ति को उसके प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त करने का अवसर मिलता है। यह नवीनतम परिस्थितियों में व्यक्ति का समायोजन कायम रखने में विशेष रूप से क्रियाशील होती है। इसका सम्बन्ध अनुभवों के विश्लेषण एवं आवश्यकताओं के नियोजन तथा पुनःसंगठन से होता है।''

जीवन संतुष्टि एक व्यक्ति को वह अपने जीवन में किस दिशा में और भविष्य में किस ओर आगे बढ़ने जा रहा है, आदि के बारे में महसूस कराती है और उनका मूल्यांकन करती है। जीवन संतुष्टि एक अच्छी तरह जीवन जीने के लिए किया जा रहा उपाय है। जिसके द्वारा दैनिक जीवन के साथ सामना करने के लिए अन्य लोगों के साथ हासिल लक्ष्यों, आत्म धारणाओं और आत्म कथित क्षमताओं के साथ सम्बन्धों का जीवन संतुष्टि के साथ मूल्यांकन करने की क्षमता होती है। जीवन संतोष अपनी शिक्षा अनुभव और रहने के स्तर के आधार पर आर्थिक स्तर पर खड़े होने की राशि है, जिससे कोई भी सुख समृद्धि पूर्ण अपने जीवन का निर्वाह कर लक्ष्योन्मुख हो सकता है।

परिवार शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द 'Family' का हिन्दी रुपान्तरण है तथा Family शब्द की उत्पत्ति शब्द Families से हुई है, जिसका अर्थ होता है 'Servant' अर्थात् वह इकाई जो बच्चों में समाज के प्रति सेवा भावना रखती है। भारत में प्राचीन काल से ही संयुक्त परिवार एवं एक दूसरे के प्रति सेवा की भावना पायी जाती थी।

क्रो एण्ड क्रो ने पारिवारिक वातावरण को स्पष्ट करते हुए कहा कि ''गृह स्थान वह होना चाहिए जहाँ पर बालक प्रत्येक प्रक्रिया में भाग लेता है। विद्यालय में तो वह केवल छः घंटे का समय व्यतीत करता है। शेष समय तो वह घर के सदस्यों के साथ ही व्यतीत करता है। अतः उस पर उसके पारिवारिक वातावरण का प्रभाव अधिक पड़ता है जो उसकी शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित करती है। जिन बालकों का पारिवारिक वातावरण अच्छा तथा संस्कारयुक्त होता है, वे बालक शिक्षा प्रक्रिया में अधिक सक्रिय होते हैं, अपेक्षाकृत उन बालकों से जिनका पारिवारिक वातावरण

अच्छा नहीं होता तथा जिनके माता–पिता बालक की शिक्षा को अधिक महत्व देते हैं।''

परिवार सामाजीकरण का एक महत्त्वपूर्ण अवयव है। परिवार में बच्चों के व्यक्तित्व को एक आकार मिलता है जिसमें उनका व्यक्तित्व ढ़लता है और प्रभावी बनता है जो उन्हें विश्व, देश , समाज, एवं परिवार में एक महत्त्वपूर्ण पहचान दिलाती हैं। परिवार में बच्चों को अच्छी आदतों के विकास के लिए प्रशिक्षण भी दिया जाता है और बच्चों का मानवीकरण भी होता है जो बच्चों के जीवन को एक दिशा प्रदान करता है। पारिवारिक वातावरण स्थितियों के अनुरूप व्यक्ति का प्रत्यीकरण करता है जो उसको समाज में सामाजिक–आर्थिक पहचान दिलाता है।

वर्तमान समय में परिवार में अनेक परिवर्तन हो रहे है जैसे परिवार के आकार में परिवर्तन, सांस्कृतिक कार्यक्रमों में परिवर्तन, मनोरंजन के कार्यो या रूचियों में परिवर्तन, पारिवारिक कार्यो का मशीनरीकरण आदि परिवर्तनों के कारण परिवार के महत्व में कमी आयी है।

बालक के विकास पर परिवार के वातावरण का पूर्ण प्रभाव पड़ता है। पारिवारिक वातावरण के आधार पर ही बालक के व्यक्तित्व का विकास होता है वंशानुक्रम के साथ–साथ वातावरण भी बालक के विकास में पूर्ण योगदान देता है। वातावरण का तात्पर्य उन परिस्थितियों से है जिनका बालक के शारीरिक एवं मानसिक विकास पर प्रभाव पड़ता है। वातावरण की सृष्टि उन समस्त परिस्थितियों से होती है जो किसी जीवधारी के 23 चरित्रगत कार्यकलापों को अनुप्रेरित या बोधित करती तथा प्रोत्साहित या निषेचित करती है। इलियट के अनुसार ''चेतन वस्तु की किसी

ईकाई के प्रभावशाली उत्तेजक तथा अन्तःक्रिया के क्षेत्र को पर्यावरण कहा जाता है। अतः पर्यावरण एक वाह्य शक्ति है जो सब पर प्रभाव डालती है।'' घर के पर्यावरण के प्रभाव से ही बालक में निहित सभी मूल शक्तियाँ विकसित अथवा कुण्ठित होती हैं। बालक अपने को पर्यावरण के अनुकूल बना कर ही समायोजित कर पाता है। वह परिवार के सदस्यों के व्यवहार, रीतियों उनकी रूचियों, मनोवृत्तियों, सामाजिक परम्पराओं तथा भाषा को सहज ही सीख लेता है और उनका प्रतीक बन जाता है। घर में बालक को अपनी मूल प्रवृत्तियों के प्रदर्शन और उनकी संतुष्टि का पर्याप्त अवसर प्राप्त होता है। घर के आदर्श एवं व्यवस्था, बालक के भावी जीवन को संचालित करते हैं। यदि परिवार का वातावरण अच्छा एवं सहयोगात्मक है और माता–पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों में परस्पर प्रेम, विश्वास तथा सौहार्द की भावना है तो बालक का भावात्मक विकास भी समुचित रूप से होता है। इसके विपरीत प्रतिकूल वातावरण में बालक के मन में भावना ग्रन्थियाँ बन जाती हैं जो उसके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में बाधक होती हैं। इसलिये घर में सुव्यवस्था और अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण आवश्यक है, जिससे बालक का सुगमता से सर्वांगीण शारीरिक, मानसिक एवं भावात्मक विकास हो सके।

पारिवारिक वातावरण केवल शैक्षणिक उपलब्धि को ही नहीं बल्कि यह मानसिक स्वास्थ्य को भी प्रभावित करता है। परिवार का अच्छा वातावरण बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखता है और बच्चे अपने जीवन में उचित समायोजन कर पाते हैं वहीं दूसरी तरफ परिवार का खराब वातावरण बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य को

नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है जिससे बच्चे हमेशा चिन्ता, तनाव व अन्तर्द्वन्द्व आदि समस्याओं से ग्रसित हो जाते हैं।

विद्यालय की विभिन्न कक्षाओं में अनेक प्रकार के छात्र शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते है। समान मानसिक योग्यताओं से सम्पन्न न होने के कारण वे समय की एक ही अवधि में विभिन्न विषयों और कुशलताओं मे विभिन्न सीमाओं तक प्रगति करते हैं। उनकी इसी प्रगति प्राप्ति या उपलब्धि का मापन या मूल्यांकन करने के लिए उपलब्धि परीक्षाओं की व्यवस्था की गई है। अतः हम कह सकते हैं कि उपलब्धि परीक्षाएं वे परीक्षाएं हैं, जिनकी सहायता से विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले विषयों और सिखाई जाने वाली कुशलताओं में छात्रों की सफलता या उपलब्धि का ज्ञान किया जाता है।

फ्रीमैन (1971) के अनुसार – ''शैक्षिक उपलब्धि परीक्षण वह परीक्षण है जो एक विषय विशेष या पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों में व्यक्ति के ज्ञान, समझ (बोध) एवं कौशल का मापन करता है।''

सुपर (1967) के अनुसार – ''एक उपलब्धि परीक्षण यह जानने के लिए प्रयुक्त किया जाता है कि व्यक्ति ने क्या और कितना सीखा और वह यह सीखा गया कार्य कितनी कुशलता से कर लेता है।''

गैरीसन – ''उपलब्धि परीक्षण बालक की वर्तमान योग्यता या किसी विशिष्ट विषय के क्षेत्र में उसके ज्ञान का मापन करती है।''

किसी भी राष्ट्र की प्रगति छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि पर निर्भर होती है। हर राष्ट्र अपने छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धियों को बेहतर बनाने के लिए प्रयत्नशील रहती है क्योंकि राष्ट्र का विकास छात्रों एवं छात्रओं पर ही निर्भर होती है।

शैक्षणिक उपलब्धियों का अर्थ होता है 'प्राप्त किये गये स्तर' हिन्दी या गणित आदि विषय जिसकी विद्यालय के अंक या प्राप्त किये गये श्रेणी के आधार पर गणना की जाती है। विद्यालय का वातावरण भी एक महत्त्वपूर्ण अंग है। अच्छी शिक्षण उपलब्धि के लिये इस वातावरण में शिक्षक, कक्षाएँ, शिक्षण सुविधाएँ, सहपाठी, शिक्षण की गुणवत्ता और स्कूल का परिवेश होता है। यह एक आदर्श एवं उच्च शैक्षणिक उपलब्धि के लिए आवश्यक अवयव है। शिक्षकों एवं अभिभावकों की प्रेरणा छात्रों की शिक्षण व्यवस्था को अनुकूल बनाते हैं। अच्छी प्रयोगशालाएँ, पुस्तकालयें जो कि नवीनतम पुस्तकों से परिपूर्ण हो, शांतिपूर्ण एवं सुरूचिपूर्ण वातावरण अच्छी शिक्षण उपलब्धि में सहायक की भूमिका निभाती हैं। कुछ विद्यार्थी ऐसे होते हैं जिनकी कक्षा में उपलब्धि उनकी योग्यताओं की अपेक्षा कम होती हैं। विद्यार्थियों की कम शैक्षणिक उपलब्धि का कारण परिवार, स्कूल और स्वयं विद्यार्थियों से संबंधित हो सकता है। जब विद्यार्थियों की पढ़ने में रुचि न हो तो उनकी शैक्षणिक उपलब्धि कम पायी जाती है।

कुछ विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धियाँ उनकी योग्यताओं की अपेक्षा अधिक अच्छी होती है। बहुधा ऐसे विद्यार्थियों को पढ़ने की अधिक सुविधाएं प्राप्त होती हैं तथा अच्छे शिक्षकों से सीखने की भी सुविधा प्राप्त होती है। विद्यालय से केवल उन्हीं विद्यार्थियों को लाभ होता है जिनका विद्यालय में कार्य निष्पादन अच्छा होता है।

विद्यालय में शैक्षणिक उपलब्धि के आधार पर ही विद्यार्थीयों की सफलताओं को ऑका जाता है। उनकी सफलता आंकते समय उनके सीखने के अन्य प्रकार के अनुभवों पर ध्यान नहीं दिया जाता है। विद्यालय में विद्यालय का वातावरण, सहपाठी, शिक्षक आदि के व्यवहार से भी विद्यार्थी प्रभावित होते हैं। जिस प्रकार बालक पर पहला प्रभाव घर का होता है। वैसे ही दूसरा प्रभाव विद्यालय का होता है जहाँ वे पढ़ते हैं। विद्यार्थी विद्यालय में ज्ञान प्राप्त करते हैं, अपनी कुशलता का विकास करते हैं और शैक्षणिक अवधि के दौरान जिन विषयों का वे अध्ययन करते हैं उनमें वे प्रतिस्पर्धात्मक बनते हैं। शैक्षणिक उपलब्धियाँ कक्षा में विद्यार्थियों के स्तर को दृढ़ बनाती है। विद्यार्थियों की उपलब्धियों की गणना परीक्षा द्वारा या अध्यापकों द्वारा परीक्षा में दिये गये अंक के आधार पर किये जाते हैं। शिक्षाका उद्देष्य छात्र एवं छात्राओं का विकास करना है और यह तभी संभव है जब उन्हें केन्द्र मानकर शिक्षादी जाये तथा समाज एवं विद्यालय का वातावरण संतुलित हो, जिससे भेद–भाव मिट सके। सभी को आदर्श शिक्षामिल सकें। शिक्षाका कार्य मार्ग दर्शन करना है।

समस्त तथ्यों पर गहराई से विचार करने के बाद एवं देश के विकास के लिए समस्त वर्गों में समानता की आवश्यकता को महत्वपूर्ण मानने के बाद शोधकर्ता के मन में जनजातीय एवं गैर जनजातीय क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति एवं शैक्षिक समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन पर शोधकार्य करने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई, जिसके लिए शोधकर्ता ने अपने शोध अध्ययन हेतु प्रस्तुत समस्या का चयन किया।

1.2 : अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व : (Importance & Significance of the Study)

किसी भी समाज समुदाय में सर्वांगीण विकास में चाहे वह आर्थिक हो, सामाजिक हो या सांस्कृति हो लेकिन इन सबसे ज्यादा सर्वप्रथम शैक्षिक विकास प्रमुख स्थान रखता है। भारत में सामाजिक एवं धार्मिक सुधारकों ने शिक्षा को महत्वपूर्ण माना था और उन्होनें शिक्षा के उत्थान के लिये कार्य भी किये। उन्होने यह अनुभव किया कि पिछड़ी जातियों एवं जनजातियों का आर्थिक एवं सामाजिक उत्थान केवल शैक्षणिक सुधार द्वारा ही संभव है।

शिक्षा के स्तर के आधार पर ही किसी समाज की सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रगति का अनुमान लगाया जा सकता है क्योंकि शिक्षा का संस्कृति के साथ अभूतपूर्व संबंध होता है। इसलिये विशेषकर आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा के प्रति व्यापक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति एवं उसके वातारण के बीच परस्पर सम्बन्ध पाया जाता है। व्यक्तित्व के प्रत्येक पहलू पर वातावरण का व्यापक प्रभाव पड़ता है और वह इन सबसे निर्देशित होता है। अतः शिक्षा संस्कृति पर निर्भर है और संस्कृति शिक्षा से संबंधित है।

आदिवासी नाम उन लोगों को दिया जाता है जो पहले से ही इन क्षेत्रों में बसे हुए थे। इनके पिछड़े हुए होने का प्रमुख कारण आदिवासी शिक्षा का स्तर अन्य जातियों से निम्नतम स्तर पर होना है।

जनजाति के लोग आर्थिक क्षेत्र में पराश्रित, शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़े हुए और सामाजिक दृष्टि से सर्वाधिक कष्टभोगी, अलगाव व अस्पृश्यता के शिकार रहे है जहां तक आदिवासियों का संबंध है उनके सबसे बड़ी समस्या या कठिनाई अलगांव है जिसके फसलस्वरूप इनमें शिक्षा का अभाव है।

भारत में जनता की उन्नति के लिये अनेक विविध उपक्रम का अमल करने के बावजूद भी जनजातिय एवं गैर जनजातिय वर्ग के लोगों की आर्थिक एवं सामाजिक शैक्षिक परिस्थिति संतोषजनक नहीं है। समाज का यह बड़ा शिक्षा से वंचित न रह जाये। उन्हें शिक्षित करना, उन्हें आत्मनिर्भर बनाना आज की आवश्यकता बन गई है।

उनके रहन–सहन और तौर–तरीके से पता लगता है कि वे लोग आज भी समाज में कितने पीछे है। इन वर्गो में शिक्षा प्रमाण औसम से कम है। इसका प्रमुख कारण कुपोषण, आर्थिक दरिद्रता काम की अयोग्य आदतें, केलापन, आत्मविश्वास का प्रभाव उच्च वर्ग के लोग तथा छात्रों के साथ समायोजन की समस्या आदि है। आजादी के बाद प्रथम एवं द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में कुछ विशेष प्रावधान रखकर उनकी उन्नति की कोशिश की गई। छात्रों की शिक्षा के संदर्भ में मुख्य समस्या उनकी बोली व भाषा है क्योंकि पाठशाला में मानक भाषा का उपयोग होता है छात्रों को अपनी मातृभाषा के अलावा अन्य भाषा को सीखना पड़ता है। इसलिय विद्यार्थी पाठशाला में आने से अप्रसन्न होते है।

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान (नीपा) द्वारा 23 से 25 नवम्बर 1985 तक शिक्षा नीति योजना एवं प्रबन्ध विषयक शैक्षिक स्थिति एवं शैक्षिक समस्या के सम्मिलित प्रतिवेदन में यह स्वीकार किया गया कि राष्ट्रीय लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए उत्तरदायित्व की प्रक्रिया की स्पष्टता में शैक्षित स्थिति एवं समस्या का निवारण किया जा सकें।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 शिक्षा में आयोजन एवं प्रबन्ध पर बल देती है तथा वास्तव में यह शिक्षा नीति भारतीय शिक्षा में सर्वप्रथम सिद्ध हुई। शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार की इस नीति को दर्शाने वाला ''शैक्षिक स्थिति एवं शैक्षिक समस्या'' नामक दस्तावेज कई स्थानों पर भारतीय शिक्षा की ओर इंगित किये गये। उक्त योजना वर्ष 1986 के प्रकाशन के पश्चात् ही इसमें गति देखने में आई।

व्यक्ति के जीवन में उनका विद्यार्थी जीवन सर्वप्रथम पहलू होता है क्योंकि शिक्षण काल में विद्यार्थी जो कुछ भी सीखता है उसी पर उसका भविष्यनिर्भर करता है, परन्तु जब विद्यार्थी को जीवन संतुष्टि नहीं मिल पाती तो उसके व्यक्तिगत मूल्यों एवं उपलब्धि अभिप्रेरणा का प्रश्न खड़ा हो जाता है। इसके साथ ही विद्यार्थी के मानसिक विकास के लिए व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पर्याप्त मात्रा में संतुष्टि होना आवश्यक है। प्राथमिक तथा गौण आवश्यकताओं के कारण शरीर के अन्दर कुछ करने की प्रेरणा होती है जिसके कारण व्यक्तिगत मूल्यों का स्तर भी घटता – बढ़ता रहता है। यदि विद्यार्थी की अधिकांश आवश्यकताएँ सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप पूरी हो जाती है तो उसकी जीवन संतुष्टि एवं उपलब्धि अभिप्रेरणा का स्तर उच्च हो जाता है, परन्तु यदि बाह्य वातावरण उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति में अवरोध डालता है या विभिन्न आवश्यकताएँ आपस में क्षतिपूर्ति के लिए संघर्ष करती हैं तो उसकी जीवन संतुष्टि का स्तर निम्न होता चला जाता है। ऐसी परिस्थितियों में यदि विद्यार्थी अधिकतर उपयुक्त व्यवहार करके अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता है या केवल आंशिक रूप से ही अपने लक्ष्य की पूर्ति कर पाता है तो उसकी जीवन संतुष्टि, उपलब्धि अभिप्रेरणा एवं सांवेगिक बुद्धि के निम्न स्तर प्रदर्शित करने की काफी सम्भावना होती है।

बालक चाहे उच्च उपलब्धि प्राप्त हो या निम्न उपलब्धि प्राप्त, उसमें अपने जीवन से सन्तुष्ट होना और परिस्थितियों का संतोषजनक निदान ढूंढ़ लेना उसकी क्षमता होती है और वह नये लक्ष्य ढूंढ लेता है जो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ–साथ सामाजिक दृष्टि से मान्य होता है।

वर्तमान परिवेश में राष्ट्रीय स्तर पर समस्त साहित्यिक, सामाजिक एवं शैक्षिक मंचों से व्यक्तिगत मूल्यों की गिरावट पर चिन्ता व्यक्त की जा रही है, जो एक गम्भीर एवं विचारणीय प्रश्न है। वर्तमान में संस्कारों, जीवनादर्शों एवं प्रतिमानों को गिरावट से बचाने की महती आवश्यकता अनुभव की जा रही है। इस दृष्टि से शिक्षाविद्, समाजशास्त्री, राजनेता, धार्मिक संगठनों के लोग जीवन–मूल्यों की सुरक्षा हेतु प्रयासरत हैं।

1.3 : अध्ययन का औचित्य : (Relevance of the Study)

वर्तमान समाज में भौतिकता की पराकाष्ठा जनजातीय एवं गैर जनजातीय विद्यार्थियों की शैक्षिक स्तर की जटिलता, विद्यार्थियों की निम्न स्तर के शैक्षिक स्तर के कारण बढ़ती जा रही है। वर्तमान में न केवल जनमानस अपितु विद्यार्थियों के अन्दर भी शैक्षिक संतुष्टि का अभाव देखने को मिलता है और इसका प्रभाव उनकी उपलब्धि अभिप्रेरणा पर अवश्य पढ़ता है। राख के भीतर छिपी हुई चिंगारी पर फूंक मारने से अग्नि खण्ड प्रकाश की बहुमुखी किरण दे सकता है। शैक्षिक समायोजन यदि उच्च स्तर के हैं तो शैक्षिक स्तर एवं शैक्षिक स्तर की जटिलता का स्तर क्या

होगा? सब बातों का अध्ययन करें तो शोध समस्या के चयन का औचित्य प्रतीत होता है।

सारस्वत, भानुप्रताप (2011) ने ''विभिन्न वर्गों के विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति एवं शैक्षिक समस्याओं का अध्ययन'' किया, शाह, गोपाल चन्द्रा; हेडलर, शान्तनु एवं दास, पुलिन (2013) ने ''अवसाद के साथ आत्म–बोध और जीवन सन्तुष्टि का सहसम्बन्ध'' किया, सोनारा, निकिता एस. (2013) ने–''युवाओं एवं वृद्धों में जीवन सन्तुष्टि का अध्ययन'' किया, सारण, धर्माराम (2015) ने ''विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व, व्यक्तिगत मूल्य, अध्ययन आदतों एवं आकांक्षा स्तर का अध्ययन'' किया। इसी प्रकार अन्य शोधार्थियों ने दशकीय अन्तराल पूर्व उच्च उपलब्धि प्राप्त विद्यार्थियों से सम्बन्धित विभिन्न चरों पर शोधकार्य सम्पन्न किये हैं, लेकिन शोधार्थी द्वारा चयनित शीर्षक पर हुए शोधकार्यों की संख्या नगण्य हैं। इसलिए चयनित शोध शीर्षक का औचित्य स्वयमेव ही सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार शोधकर्ता के मन में निम्न प्रश्न उठे – जनजातीय एवं गैर जनजातीय क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति का शैक्षिक समस्याओं के साथ क्या सम्बन्ध होता है? इस से सम्बंधित प्रश्नों के उत्तर खोजने हेतु शोधकर्ता ने '' सिरोही जिले के जनजातीय एवं गैर जनजातीय क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति एवं शैक्षिक समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन '' विषय पर अध्ययन करने का निश्चय किया ।

1.4 : समस्या कथन : (Statement of the Problems)

" सिरोही जिले के जनजातीय एवं गैर जनजातीय क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति एवं शैक्षिक समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन "

"COMPARATIVE STUDY OF EDUCATIONAL STATUS AND EDUCATIONAL PROBLEMS OF THE STUDENTS OF TRIBAL AND NON TRIBAL AREA OF SIROHI DISTRICT"

1.5: अध्ययन के उद्देश्य : (Objectives of the Problems)

बिना किसी उद्देश्य के आरम्भ किये गए कार्य की सफलता पर हमेशा प्रश्न चिन्ह लगा रहता है। इसलिए यह आवश्यक है कि कार्य कोई भी हो उसको आरम्भ करने से पूर्व उसके उद्देश्यों को निर्धारित कर लिया जाये। उद्देश्य निर्धारित करने के उपरान्त किया गया कार्य निश्चित रूप से सफल होता है। इसीलिए कोई अनुसंधान कार्य करने से पूर्व उसके उद्देश्यों को निर्धारित करना आवश्यक है। किसी भी शोध कार्य को निश्चित दिशा देने के लिये उसके उद्देश्यों का निरूपण अत्यन्त आवश्यक होता है। ये वस्तुतः शोध प्रश्नों पर आधारित होते है जिन्हें औपचारिक भाषा में लिखा जाता है। प्रस्तावित शोध कार्य के निम्नलिखित उद्देश्य है

- जनजातीय एवं गैर जनजातीय क्षेत्र के बालक– बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति का अध्ययन करना।
- जनजातीय एवं गैर जनजातीय क्षेत्र के निजी एवं राजकीय विद्यालयों के बालक– बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति का अध्ययन करना।

- जनजातीय एवं गैर जनजातीय क्षेत्र के निजी एवं राजकीय विद्यालयों के बालक– बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- जनजातीय एवं गैर जनजातीय क्षेत्र के बालक– बालिकाओं की शैक्षिक समस्याओं का अध्ययन करना।
- जनजातीय एवं गैर जनजातीय क्षेत्र के निजी एवं राजकीय विद्यालयों के बालक– बालिकाओं की शैक्षिक समस्याओं का अध्ययन करना।
- जनजातीय एवं गैर जनजातीय क्षेत्र के निजी एवं राजकीय विद्यालयों के बालक– बालिकाओं की शैक्षिक समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।

1.6 : परिकल्पनाएँ : (Hypothesis)

परिकल्पना किसी समस्या के वे संभावित परिणाम होते है जिनका परिणाम संभव होता है। समस्या के चयन, उसके अध्ययन के उद्देश्यों के निर्धारण एवं मूल मान्यताओं को निर्धारित कर लेने के बाद यह आवश्यक है कि शोधकर्ता अपने उपलब्ध ज्ञान, अनुभव तथा बुद्धि कौशल के आधार पर यह पूर्वानुमान लगायें कि इस अध्ययन से क्या निष्कर्ष प्राप्त हो सकते हैं। अध्ययनकर्ता के इस बुद्धिमतापूर्ण अनुमान को ही शोध के क्षेत्र में परिकल्पना कहते हैं। परिकल्पना सदैव अस्थायी होती है। शोध के निष्कर्ष के अनुरूप उसे स्वीकृत अथवा अस्वीकृत किया जाता है। प्रस्तुत शोधकार्य में शोधकर्ता ने निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाएँ निर्धारित की है –

- जनजातीय एवं गैर जनजातीय क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
- जनजातीय क्षेत्र के राजकीय एवं निजी विद्यालयों के बालक–बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
- गैर जनजातीय क्षेत्र के राजकीय एवं निजी विद्यालयों के बालक–बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
- जनजातिय एवं गैर जनजातीय क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक समस्याओं में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
- जनजातीय क्षेत्र के राजकीय एवं निजी विद्यालयों के बालक–बालिकाओं की शैक्षिक समस्याओं में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
- गैर जनजातीय क्षेत्र के राजकीय एवं निजी विद्यालयों के बालक–बालिकाओं की शैक्षिक समस्याओं में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

1.7: शोध शीर्षक में प्रयुक्त शब्दावली की व्याख्या :–

जनजातीय :

डॉ मजमदार के अनुसार – एक जनजाति परिवार या परिवारों के समूह का संकलन होता है। जिसका एक सामान्य नाम होता है। जिसमें सदस्य एक निश्चित भू–भाग पर रहते है। विवाह, व्यवसाय या उद्योग के विषय में निषेधात्मक नियमों का पालन करते है।

जनजातिय क्षेत्र :

अनुसूचित जनजाति' शब्द सबसे पहले भारत के संविधान में आया था। अनुच्छेद 366 (25) ने अनुसूचित जनजातियों को "ऐसी जनजातियों या जनजातीय समुदायों या ऐसी जनजातियों या जनजातीय समुदायों के कुछ हिस्सों या समूहों के रूप में परिभाषित किया है जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिए अनुच्छेद 342 के तहत अनुसूचित जनजाति माना जाता है"। अनुच्छेद 342, जिसे नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है, अनुसूचित जनजातियों के विनिर्देश के मामले में पालन की जाने वाली प्रक्रिया को निर्धारित करता है।

शैक्षिक स्थिति :

जनजातिय बालक–बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति के दृष्टिकोण से देखा जाये तो

जनजाति समुदाय अन्य समुदाय की तुलना में बहुत पीछे है। साक्षरता की दृष्टि से जनजातिय बालक–बालिकाओं की शिक्षा पिछड़ी है। जनजातिय बालक–बालिकाएं शिक्षा के अवसरों से वंचित रहती है। इसमें जनजातीय एवं गैर जनजातीय क्षेत्र के विद्यार्थियों की वर्तमान पारिवारिक, शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक स्थिति को सम्मिलित किया जायेगा।

1.8: अध्ययन क्षेत्र

राजस्थान के दक्षिण–पश्चिमी भाग में सिरोही राज्य मुख्यालय जयपुर से 418 किमी. , संभागीय मुख्यालय जोधपुर से 196 किमी. दूरी पर राष्ट्रिय राजमार्ग संख्या 14

पर स्थित है। यह 24°53´6" उतरी अक्षांश और 72°51´45" पूर्वी देशांतर पर माध्य समुद्र तल से 321 मीटर उंचाई पर स्थित है। सिरोही सड़क मार्ग द्वारा देश के विभिन्न भागों से भली–भांति जुड़ा है। नजदीक का रेलवे स्टेशन 22 किलोमीटर की दूरी पर सिरोही रोड़ है।

सिरोही नगर का पश्चय क्षेत्र काफी विस्तृत है। यहाँ वाणिज्यिक एवं कृषि से सम्बन्धित गतिविधियाँ प्रमुख रूप से संचालित है। इस क्षेत्र की फसलों में बाजरा, ज्वार, मक्का, मूंग–मोठ, तिल, सरसो, अरण्डी, सौंफ आदि फसलों की पैदावार होती है। सिरोही में रीको द्वारा ओद्यौगिक क्षेत्र की स्थापना से यहाँ उद्योग क्षेत्र में तीव्र विकास हुआ है। यहाँ विभिन्न प्रकार की कई ओद्यौगिक ईकाइयाँ स्थापित है। इससे रोजगार का सृजन हुआ है। ओद्यौगिक विकास के साथ–साथ नगर में व्यापार एवं वाणिज्यिक गतिविधियों का काफी विस्तार हुआ है। इस क्षेत्र में यह नगर आस–पास की जनसंख्या के लिए क्रय–विक्रय का प्रमुख केन्द्र होने के साथ–साथ प्रशासनिक केन्द्र के रूप में कार्यरत है।

सिरोही की जनसंख्या वर्ष 1961 में 14451, वर्ष 1971 में 18774, वर्ष 1981 में 23903, वर्ष 1991 में 28117 थी, जो वर्ष 2001 में बढ़कर 35544 हो गयी। सर्वाधिक वृद्धि दर वर्ष 1961–71 के दशक में 29.91 प्रतिशत हुई तथा वर्ष 1991 से 2001 के दशक में वृद्धि दर 26.41 प्रतिशत हुई है।

सिरोही, दक्षिण–पश्चिमी राजस्थान का एक मुख्य नगर है। सिरोही जिला मुख्यालय होने के साथ–साथ उपखण्ड, तहसील व पंचायत समिति मुख्यालय भी है। इससे यह सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व वाणिज्यिक गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु है।

राजस्थान में अरावली पर्वतमाला दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व दिशा में विस्तृत है। अरावली पर्वतमाला की प्राकृतिक स्थिति का इसके धरातल, भौतिक स्वरूप, जलवायु तथा मानवीय गतिविधियों पर प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है। राजस्थान में सिरोही के दक्षिण–पूर्व दिशा में, पहाड़ियां है तो दूसरी तरफ उत्तर–पश्चिम दिशा में मरूस्थल है। सिरोही का धरातल सभी भागों में भौतिक दृष्टि से एक समान नहीं है। भूमि उबड़–खाबड़ है। सिरोही नगर अरावली पहाड़ी क्षेत्र में स्थित है। कई प्राकृतिक नाले विद्यमान है। इस नगर की जलवायु अर्द्ध शुष्क है। यहाँ के मौसमीय तापमान में असमानता रहती है। जून माह सर्वाधिक गर्म एवं जनवरी माह अधिक ठण्डा माह होता है। यहाँ का वार्षिक औसत अधिकतम तापमान 33 डिग्री एवं वार्षिक औसत न्यूनतम तापमान 18 डिग्री सेल्सियस तक रहता है। यहाँ वर्षा का वार्षिक औसत 634 मिलीमीटर है। वर्षा दक्षिण–पश्चिमी मानसून से होती है। राजस्थान में अरावली की श्रेणीयों का विस्तार मानसूनी हवाओं के समानान्तर होने तथा ऊँचाई अधिक न होने के कारण ये श्रेणीयां जल से भरी हवाओं को रोककर वर्षा कराने में सहायक नहीं होती है। वर्षा ऋतु में तापमान में गिरावट आ जाती है। इस ऋतु में हवा में नमी अधिक रहने से सापेक्षिक आर्द्रता 80 प्रतिशत तक रहती है। ग्रीष्म ऋतु में प्रचलित हवाओं की दिशा दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व की ओर तथा शरद ऋतु में उत्तर–पूर्व से दक्षिण–पश्चिम की ओर रहती है।

1.8.1 : अध्ययन का परिसीमन : (Delimitation of the Study)

किसी भी वृहद् क्षेत्र के अध्ययन को सरल एवं प्रभावी बनाने हेतु उसका परिसीमन करना आवश्यक है। यदि समस्या स्पष्ट एवं सीमित होगी तो उसका अध्ययन

गहनता से किया जा सकता है। अतः अनुसंधान की वैधता, विश्वसनीयता व उपयोगी परिणामों को निर्धारित समय में प्राप्त करने हेतु अध्ययन क्षेत्र का परिसीमन आवश्यक हो जाता है। अतः शोधार्थी ने भी अध्ययन की सुलभता व समयाभाव के कारण शोध का परिसीमन किया है यथाः

- प्रस्तुत शोध दक्षिणी राजस्थान के सिरोही जिले के आबू रोड क्षेत्र के सभी ब्लाक स्तर से लिया गया है।
- प्रस्तुत शोध दक्षिणी राजस्थान के सिरोही जिले के आबू रोड क्षेत्र के सभी ब्लाक स्तर के जनजातीय एवं गैर जनजातीय क्षेत्र के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया जायेगा।
- प्रस्तुत शोध हेतु जिले के निजी एवं राजकीय स्तर के विद्यालयों तक ही सीमित रखा गया है।
- शोध में छात्र/छात्राओं के रूप में लिंग भेद किया गया है।
- प्रस्तुत शोध केवल माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों तक ही सीमित रहेगा।
- शोध में विद्यार्थियों के सामाजिक, आर्थिक व पारिवारिक परिदृष्य का अध्ययन सम्मिलित नहीं किया जायेगा।
- प्रस्तुत शोध में जनजातीय एवं गैर जनजातीय क्षेत्र के कुल 480 विद्यार्थियों को सम्मिलित किया जायेगा।